

(समयसार) १२३ कलश। १२२ में आ गया कि शुद्धनय त्यागनेयोग्य नहीं है। अर्थात् क्या? व्यवहारनय त्यागनेयोग्य है। दो बात हुई न उसमें? आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप का परिणमन और दृष्टि (हुई), वह छोड़नेयोग्य नहीं है और उसके अत्याग से कर्मबन्ध नहीं होता, उसके त्याग से बन्ध होता है और उसके अत्याग से बन्ध नहीं होता। अर्थात्? शुद्धचैतन्यस्वभाव का जिसे त्याग नहीं है, उसे बन्ध नहीं होता और जिसे व्यवहार का त्याग है, उसे बन्ध नहीं होता। आहाहा! और जिसे व्यवहार का अत्याग है, उसे बन्ध होता है। तात्पर्य कहा है न? यहाँ इस श्लोक (में) तात्पर्य है, रहस्य है। तात्पर्य अर्थात् रहस्य। पूरे सिद्धान्त का यह रहस्य है।

मुमुक्षु : सिद्धान्त का सार क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : तात्पर्य यह सार है, रहस्य है। आहाहा! चाहे जितने फिर बारह अंग पढ़ो, वाँचो। बात यह कि यह चैतन्यवस्तु पूर्ण शुद्ध आनन्द की श्रद्धा और उसका परिणमन (होवे), वह छोड़नेयोग्य नहीं है। उसे छोड़कर व्यवहार आदरणीय नहीं है। उसे छोड़े नहीं तो बन्ध होगा नहीं। उसे छोड़े नहीं तो बन्ध होगा नहीं और व्यवहार को (ग्रहण करे) तो बन्ध होगा। व्यवहार को छोड़े तो अबन्ध रहे और व्यवहार का आदर करे तो बन्ध

होगा। आहाहा! उसमें आ गया है न यह? उसके अत्याग से (कर्म का) बन्ध नहीं होता.. जिसे शुद्धस्वरूप की दृष्टि हुई और शुद्ध का परिणमन हुआ, वह जिसने छोड़ा नहीं अर्थात् उसके आदर में है, उसे बन्ध नहीं होता। आहाहा! और जिसने शुद्धनय को छोड़ा है और अशुद्ध ऐसा व्यवहारनय को जिसने ग्रहण किया है, उसे बन्धन (होगा)। यहाँ तो स्पष्ट बात है, तात्पर्य है, हों! तात्पर्य (लिखा) है न? इद-मेवात्र तात्पर्य यह रहस्य है। आहाहा! निश्चय और व्यवहार का यह रहस्य है।

जिसने आत्मा शुद्ध चैतन्यस्वरूप, परम आनन्द और अमृत के सागर का जिसने स्पर्श करके आदर किया और अनुभव किया और जिसे शुद्धपरिणति प्रगट हुई, वह छोड़ने जैसा नहीं है, क्योंकि उससे मुक्ति है और व्यवहार छोड़नेयोग्य है क्योंकि उसे छोड़ने से मुक्ति है। व्यवहार को न छोड़ने से बन्धन है। आहाहा! यह तात्पर्य (भूत) पूरी बात है। यह श्लोक ही ऐसा रखा है। इद-मेवात्र तात्पर्य हेयः शुद्ध-नयो न हि। आहाहा! लाख बात हुई हो और अनेक प्रकार के नय के और प्रमाण के प्रकार आवें, परन्तु यह चीज जो है, शुद्धस्वरूप (जो) राग से भिन्न, ऐसा जो शुद्धस्वरूप का परिणमन, वही मोक्ष का मार्ग है, उससे बन्ध नहीं परन्तु उससे मुक्ति है और शुद्धनय को छोड़कर राग का, व्यवहारनय का आदर करेगा, उसे मुक्ति नहीं है, उसे बन्ध है। आहाहा!

मुमुक्षु : व्यवहार को जाननेयोग्य रखें तो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जाननेयोग्य का अर्थ ऐसा कि 'है',—ऐसा जाना। परन्तु है बन्ध का कारण। जाननेयोग्य है या नहीं? परन्तु अकेला जाननेयोग्य है? बन्ध का कारण है। आहाहा!

कलश-१२३

‘शुद्धनय त्याग करनेयोग्य नहीं है’ इस अर्थ को दृढ़ करनेवाला काव्य पुनः कहते हैं:-

(शार्दूलविक्रीडित)

धीरोदार-महिम्ननादि-निधने बोधे निबध्नन्धृतिं,
त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वकषः कर्मणाम् ।
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः,
पूर्णं ज्ञान-घनौघ-मेक-मचलं पश्यन्ति शान्तं महः ॥१२३॥

श्लोकार्थ : [धीर उदार महिम्नि अनादिनिधने बोधे धृतिं निबध्नन् शुद्धनयः] धीर (चलाचलता रहित) और उदार (सर्व पदार्थों में विस्तार युक्त) जिसकी महिमा है, ऐसे अनादिनिधन ज्ञान में स्थिरता को बाँधता हुआ (अर्थात् ज्ञान में परिणति को स्थिर रखता हुआ) शुद्धनय-[कर्मणाम् सर्वकषः] जो कि कर्मों का समूल नाश करनेवाला है-[कृतिभिः] पवित्र धर्मात्मा (सम्यग्दृष्टि) पुरुषों के द्वारा [जातु] कभी भी [न त्याज्यः] छोड़नेयोग्य नहीं है। [तत्रस्थाः] शुद्धनय में स्थित वे पुरुष, [बहिः निर्यत् स्वमरीचि-चक्रम् अचिरात् संहृत्य] बाहर निकलती हुई अपनी ज्ञान-किरणों के समूह को (अर्थात् कर्म के निमित्त से परोन्मुख जानेवाली ज्ञान की विशेष व्यक्तियों को) अल्प काल में ही समेटकर, [पूर्णं ज्ञान-घन-ओघम् एकम् अचलं शान्तं महः] पूर्ण, ज्ञानघन के पुञ्जरूप, एक, अचल, शान्त तेज को-तेज पुञ्ज को [पश्यन्ति] देखते हैं अर्थात् अनुभव करते हैं।

भावार्थ : शुद्धनय, ज्ञान के समस्त विशेषों को गौण करके तथा परनिमित्त से होनेवाले समस्त भावों को गौण करके, आत्मा को शुद्ध, नित्य, अभेदरूप, एक चैतन्यमात्र ग्रहण करता है और इसलिए परिणति शुद्धनय के विषयस्वरूप चैतन्यमात्र शुद्ध आत्मा में एकाग्र-स्थिर-होती जाती है। इस प्रकार शुद्धनय का आश्रय लेनेवाले जीव बाहर निकलती हुई ज्ञान की विशेष व्यक्तताओं को अल्प काल में ही समेटकर, शुद्धनय में (आत्मा की शुद्धता के अनुभव में) निर्विकल्पतया स्थिर होने पर अपने आत्मा को सर्व कर्मों से भिन्न, केवलज्ञानस्वरूप, अमूर्तिक पुरुषाकार, वीतराग ज्ञानमूर्तिस्वरूप देखते हैं और शुक्लध्यान में प्रवृत्ति करके अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्रगट करते हैं। शुद्धनय का

ऐसा माहात्म्य है। इसलिए श्री गुरुओं का यह उपदेश है कि जब तक शुद्धनय के अवलम्बन से केवलज्ञान उत्पन्न न हो, तब तक सम्यग्दृष्टि जीवों को शुद्धनय का त्याग नहीं करना चाहिए।।१२३।।

श्लोक - १२३ पर प्रवचन

१२३ (कलश)

धीरोदार-महिम्ननादि-निधने बोधे निबध्नन्धृतिं,
त्याज्यः शुद्धनयो न जातु कृतिभिः सर्वकषः कर्मणाम् ।
तत्रस्थाः स्वमरीचिचक्रमचिरात्संहृत्य निर्यद्बहिः,
पूर्णं ज्ञान-घनौघ-मेक-मचलं पश्यन्ति शान्तं महः ।।१२३।।

आहाहा! [धीर उदार महिम्नि अनादिनिधने बोधे धृतिं निबध्नन् शुद्धनयः] कैसा है स्वरूप? धीर (चलाचलता रहित).. है। भगवान अन्दर में शुद्ध जो ध्रुव; शुद्ध, वह चलाचलतारहित है। उदार.. है। (सर्व पदार्थों में विस्तार युक्त).. अर्थात् सब पदार्थों को जाने, ऐसा वह उदार है। स्वयं एक पदार्थ में ऐसा ज्ञान होने पर भी वह ज्ञान सब पदार्थों को जाने, ऐसा उदार है। आहाहा!

जिसकी महिमा है.. आहाहा! उदार है। जिसकी महिमा उदार है। जिसके ज्ञान की पर्याय शुद्ध चैतन्य वस्तु के अवलम्बन से प्रगट हुई, वह लोकालोक को जानने की ताकत रखती है, ऐसी उसकी महिमा है। जिसकी महिमा है, ऐसे अनादिनिधन ज्ञान में.. अनादिनिधन—अनादि अर्थात् आदि नहीं; अनिधन अर्थात् अन्त नहीं। जिसकी शुरुआत नहीं और जिसका अन्त नहीं, ऐसा अनादि-अनन्त आत्मा है। आहाहा! ऐसे अनादि-अनन्त ज्ञान में अर्थात् आत्मा में स्थिरता को बाँधता हुआ.. आहाहा! जैसे खूँटे से बाँधते हैं न? इसी प्रकार इस ध्रुव में आत्मा की पर्याय को बाँधता हुआ। आहाहा! अनादि-अनन्त जो आत्मा ज्ञानस्वरूपी प्रभु, उसमें स्थिरता करता हुआ। आहाहा! (अर्थात् ज्ञान में परिणति को स्थिर रखता हुआ).. स्थिर करता हुआ। शुद्धस्वरूप में उसकी स्थिरता को स्थिर रखता हुआ।

शुद्धनय जो कि कर्मों का समूल नाश करनेवाला है.. आहाहा! आस्रव अधिकार है न! कर्मों का समूल नाश करनेवाला है.. आहाहा! यह जिसने चैतन्य शुद्ध की दृष्टि की और अनुभव किया, वह शुद्धनय कर्मों को मूल में से उखाड़ डालता है। मूल वस्तु को जहाँ पकड़ा, चैतन्यघन अनादि-अनन्त मूल (वस्तु को) जहाँ पकड़ा, वहाँ कर्म का मूल में से नाश हो जाता है। इस मूल को पकड़ा तो उसका मूल नाश होता है। आहाहा!

कर्मों का समूल नाश करनेवाला है.. [कृतिभिः] पवित्र धर्मात्मा.. आहाहा! धर्मी को पवित्र धर्मी ऐसी उपमा दी है। [कृतिभिः] [कृतिभिः] है न? [कृतिभिः] [कृतिभिः] अर्थात् समकिति [कृतिभिः] अर्थात् समकिति। जिसने कार्य किया है। आहाहा! जो यह चैतन्य शुद्ध दल, उसे दृष्टि में लिया है, उसने कार्य किया है। वह कार्य करनेवाला (है, इसलिए) उसे यहाँ समकिति कहते हैं।

पवित्र धर्मात्मा (सम्यग्दृष्टि) पुरुषों के द्वारा.. अर्थात् आत्मा के। सम्यग्दृष्टि आत्मा के। कभी भी.. [न त्याज्यः] आहाहा! छोड़नेयोग्य नहीं है। किसी क्षण भी शुद्धनय-स्व का आश्रय है, वह शुद्धपरिणति छोड़नेयोग्य नहीं है। आहाहा! बहुत कठिन काम। एक आदरणीय है, तब एक हेय है। है न? 'हि' आता है न? आहाहा! [तत्रस्थाः] शुद्धनय में स्थित वे पुरुष,.. ज्ञानस्वरूपी भगवान्, उसमें जो आत्माएँ स्थित हैं। आहाहा! [बहिः निर्यत् स्वमरीचि-चक्रम् अचिरात् संहृत्य] आहाहा! उन जीवों को बाहर निकलती हुई अपनी ज्ञान-किरणों.. ज्ञान की किरणें बाहर में जाती थीं, राग में या उसमें जुड़ती थी, उन्हें समेट ले। आहाहा!

ज्ञान की किरणें (अर्थात्) पर्याय जो बाहर दया, दान, व्रतादि में जाती हो.. आहाहा! उसे भी समेट ले। आहाहा! समेट ले। है? ज्ञान-किरणों के समूह को.. बाहर निकलती हुई अपनी... (ज्ञान किरणें)। अपनी जो ज्ञान की पर्याय—उपयोग बाहर जाता हो उसे। (अर्थात् कर्म के निमित्त से परोन्मुख जानेवाली ज्ञान की विशेष व्यक्तियों को).. अर्थात् मूल तो विकार। ज्ञान अन्दर में से (छूटकर) बाहर जाए, वहाँ विकार (उत्पन्न होता है)। (उन व्यक्तियों को) अल्प काल में ही समेटकर,.. आहाहा! राग में जाता हुआ ज्ञान, उसे अल्प काल में समेटकर। बाद में करूँगा, बाद में करूँगा, बाद में करूँगा - ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जो ज्ञानस्वरूप भगवान्! शुभाशुभराग में उस ज्ञान की किरणें

जाती थीं, उन्हें अल्प काल में ही समेटकर,.. आहाहा! क्योंकि जो पर में जाता था, (वह) तो बन्ध का कारण है। इसलिए उसे अल्प काल में समेटकर आत्मा में समाहित करे। आहाहा!

अल्प काल में.. (समेटकर) पूर्ण, ज्ञानघन.. [पूर्ण ज्ञान-घन-ओघम् एकम् अचलं शान्तं महः] पूर्ण, ज्ञानघन के पुञ्जरूप,.. प्रभु अकेला पुंज-ज्ञान का पिण्ड! समझ का पिण्ड! ज्ञान का रसकन्द! ध्रुव! आहाहा! ऐसा जो ज्ञान का पुंज। ज्ञानघन के पुंज में। ज्ञानघनरूपी पुंज में, पुञ्जरूप, एक,.. आहाहा! वह एक स्वरूप है, उसमें स्थिर हो। अनेकपने की ओर उन्मुखता हो, उसे छोड़ दे। रागादि भाव (को छोड़ दे)।

एक तो यह कहा, पूर्ण, ज्ञानघन के पुञ्जरूप,.. दो (दूसरी बात) एक,.. वस्तु एकरूप है। चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. चैतन्य.. अनादि-निधन एकरूप वस्तु है। उसमें समेट ले। उल्टी प्रवृत्ति जाती हो तो (उसमें से) हटकर ऐसे ला दे। अचल,.. है। ऐसा भगवान आत्मा पूर्णानन्दस्वरूप अचल है। आहाहा! शान्त तेज को.. शान्त तेज! शान्ति / उपशमरस से भरपूर! आहाहा! शान्त पुंज / शान्त तेज का पुंज! (उस) तेजःपुञ्ज को देखते हैं.. परसन्मुख की वृत्ति खींचकर आत्मा पर आता है, तब अपने ऐसे पूर्ण को, पूर्ण ज्ञानघन पुंजरूप को, एक को, अचल को, शान्त तेज को, शान्त तेज के पुंज को अनुभव करते हैं। देखते हैं अर्थात् अनुभव करते हैं। इसका नाम आत्मा का ज्ञान और आत्मा का अनुभव, इसका नाम मोक्ष का मार्ग। आहाहा!

[न त्याज्यः] इसमें कहीं आया था। पहले में आया था न? इसमें भी आया [न त्याज्यः] (अर्थात् कि शुद्धनय का) त्याग नहीं करना, ऐसा। राग का त्याग करना। परवस्तु के त्याग-ग्रहण की यहाँ बात नहीं है। परवस्तु का त्याग-ग्रहण आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! जो राग है, वह त्याज्य है और जो स्वभाव है, वह अत्याज्य है। स्वभाव का आदर, सत्कार का परिणमन (और) राग का अभाव। आहाहा! ऐसा समझना पहले लोगों को कठिन पड़ता है, (इसलिए) लोग क्रियाकाण्ड में खिंच गये, उसमें धर्म मान लिया गया।

भावार्थ : शुद्धनय, ज्ञान के समस्त विशेषों को गौण करके.. क्या कहते हैं? कि ज्ञान है, वह मति, श्रुत और अवधि के जो भेद हैं, उनके प्रति का लक्ष्य छोड़ दे, सम्यग्दृष्टि जीव को आत्मा के स्वभाव का-धर्म का अनुभव करना हो, तब ज्ञान के भेद

जो हैं, उन्हें छोड़ दे, गौण करे। आहाहा! लो, ठीक! गौण करे। परनिमित्त से होनेवाले समस्त भावों को गौण करके,.. दो (बातें) हुई। एक तो ज्ञान के भेद पड़ते हैं, उन्हें गौण कर डाले, अभेद पर दृष्टि करे और परनिमित्त से होनेवाले रागादि को गौण करके स्वभावसन्मुख दृष्टि करे। आहाहा! ऐसा मार्ग है। परनिमित्त से होनेवाले समस्त भावों.. पहले में ऐसा था, ज्ञान के समस्त विशेष, ज्ञान के समस्त विशेषों को गौण करके। यहाँ (ऐसा कहा कि) परनिमित्त से होनेवाले विकल्प-इन समस्त विकल्पों को छोड़कर।

आत्मा को शुद्ध,.. ज्ञान के भेदों का लक्ष्य छोड़कर (अर्थात्) गौण करके। भले अभाव नहीं। और परनिमित्त से होनेवाले रागादि विकल्प को गौण करके। अब करना क्या? कि शुद्ध, नित्य अभेदरूप,.. भगवान पवित्र है। आहाहा! अकेला पवित्रता की खान है। आहाहा! [कृतिभिः] नहीं (आया था)? सम्यग्दृष्टि पवित्र धर्मी, ऐसा कहा है न! [कृतिभिः] उसमें आया है। अर्थात् पवित्र धर्मी। आहाहा! अपने जो पवित्र गुण हैं, उनका जो अर्थी हुआ। अभेद से, अभेद, हों! गुणभेद भी नहीं। उसे अभेदरूप,.. (कहते हैं)।

एक चैतन्यमात्र ग्रहण करता है.. आहाहा! सम्यग्दृष्टि ऐसे आत्मा को ग्रहण करता है। भेद के प्रकार को गौण करके, परनिमित्त से होनेवाले विकल्पों को भी छोड़कर.. आहाहा! गौण क्यों कहा? कि भले टल न जाए, परन्तु उनका आश्रय छोड़कर, उनका लक्ष्य छोड़ दे, ऐसा। रहे, रागादि रहे। पर्याय में भेदादि रहे परन्तु गौण करके, उनके प्रति लक्ष्य छोड़कर। रागादि रहे, पूर्ण वीतराग न हो, तब तक (रहे) परन्तु उनका लक्ष्य छोड़कर, (ऐसा कहना है)। आहाहा! यह धर्म करनेवाले को यह करना पड़ेगा, ऐसा कहते हैं, तब धर्म होगा। आहाहा!

ग्रहण करता है और इसलिए परिणति शुद्धनय के विषयस्वरूप.. परिणति अर्थात् वर्तमान दशा। शुद्धनय के विषयस्वरूप चैतन्यमात्र.. शुद्धनय का विषय तो चैतन्यमात्र एक ध्रुव अखण्ड अभेद, एक है। आहाहा! ऐसा जो विषय चैतन्यमात्र शुद्ध आत्मा में एकाग्र-स्थिर-होती जाती है। परिणति (स्थिर होती जाती है)। इस प्रकार आत्मा शुद्ध में (परिणति की) एकाग्रता होती जाती है। लो, यह एकाग्रता का आया! देवीलालजी! विकल्प से एकाग्रता का अभ्यास करना, यह नहीं। आहाहा! यह वस्तु है

भगवान आनन्दकन्द, शुद्ध, अभेद, एकरूप, उसमें एकाग्र होता जाता है। उसमें परिणति स्थिर होती जाती है।

इस प्रकार शुद्धनय का आश्रय लेनेवाले जीव.. इस प्रकार भगवान पूर्ण अभेद चैतन्य का आश्रय करनेवाले जीव, बाहर निकलती हुई ज्ञान की विशेष व्यक्तताओं को अल्प काल में ही समेटकर,.. बाहर निकलती ज्ञान की (व्यक्तियाँ अर्थात् भेद); और सर्व कर्मों से भिन्न, केवलज्ञानस्वरूप, अमूर्तिक पुरुषाकार,.. आहाहा! पुरुष के आकार से आकार है। स्त्री के शरीर में रहा हुआ आत्मा भी, है तो वह स्वयं अपने पूर्ण स्वरूप रूप ही है। उसका वह भी पुरुषाकार कहा जाता है, उसे पुरुषाकार कहा जाता है। आहाहा! वीतराग ज्ञानमूर्तिस्वरूप.. आहाहा! वीतराग ज्ञानस्वरूप अपने आत्मा को देखते हैं.. आहाहा!

अर्थकार ने कितनी स्पष्टता की है! वे कहते हैं, नहीं। आचार्य का कथन लाओ परन्तु आचार्य के कथन में गम्भीरता बहुत है और पण्डित हुए ऐसे कि उसका स्पष्टीकरण बहुत अच्छा किया। बनारसीदास, टोडरमल... आहाहा! चर्चा में ऐसा हुआ न वहाँ? कौन सा गाँव कहलाता है? खानिया... खानिया..! खानिया में चर्चा हुई तो वे लोग कहें, पण्डितों के शब्द नहीं, आचार्य के (कथन) चर्चा में लाओ। फूलचन्दजी ने कहा, आचार्यों, मुनि और पण्डित सबके देखेंगे। संस्कृत, प्राकृत, देशभाषा पण्डितों ने की, वह सब चाहिए। बनारसीदास ने भी तीन भाषा आती है। आहाहा! क्योंकि पण्डितों ने स्पष्ट कर दिया है, इसलिए उन्हें वह खटकता है। शास्त्रों में गम्भीर बात गम्भीर है। गम्भीर को स्पष्ट (रूप से) साधारण लोगों को समझ में आये, इस प्रकार से अर्थकार ने (अर्थ) किये हैं। टोडरमल, बनारसीदास, भागचन्दजी, जयचन्दजी, हेमराजजी भी... आहाहा!

ऐसे जीव बाहर निकलती हुई ज्ञान की विशेष.. व्यक्तियाँ अर्थात् भेद, उन्हें समेटकर,.. एकरूप ज्ञानरूप हो जाता है। आहाहा! भेद को भी छोड़कर। राग को तो छोड़, परन्तु भेद को छोड़ क्योंकि भेद पर लक्ष्य जाएगा तो राग होगा। आहाहा! निमित्त पर लक्ष्य जाएगा तो राग होगा और कर्म के निमित्त से होने से राग होगा परन्तु भेद के लक्ष्य पर जाएगा (तो भी) राग होगा। आहाहा! इसलिए निमित्त को छोड़कर, भेद को छोड़कर, कर्म के निमित्त से होनेवाले विकार को भी छोड़कर... आहाहा! निर्विकारी भगवान अन्दर

एकरूप विराजता है, उसका अनुभव करना। आहाहा! यहाँ से धर्म की शुरुआत, यहाँ से है। बाकी सब बातें हैं। मूल बात ऊपर से गयी, पड़ी रही।

आहाहा! वस्तु है पूरी, पूर्ण स्वरूप है, अखण्ड है, अभेद है। उसे भेद का लक्ष्य छोड़कर, राग का लक्ष्य छोड़कर... आहाहा! अखण्ड ज्ञायक चैतन्यस्वरूप भूतार्थ जो है, उस पर दृष्टि लगा, उसका अनुभव कर। ऐसा है।

शुद्धनय में (आत्मा की शुद्धता के अनुभव में) निर्विकल्पतया स्थिर होने पर.. देखा! आहाहा! यहाँ तो बात ही (यह है)। विकल्प से निर्णय करे, वह नहीं। अन्दर निर्विकल्परूप से स्थिर होने पर, भेद पर लक्ष्य नहीं तो विकल्प (का) तो प्रश्न कहाँ है? आहाहा! ज्ञान के भेद, दर्शन के भेद, ऐसे भेद पर्याय में हैं, उनका भी लक्ष्य छोड़कर। राग के विकल्प की तो क्या बात करना? आहाहा! ऐसा निर्विकल्प आत्मा... आहाहा! निर्विकल्पतया स्थिर होने पर.. आहाहा! स्वरूप में भेद और राग का लक्ष्य छोड़कर स्थिर होने पर। सर्व कर्मों से भिन्न, केवल ज्ञानस्वरूप,.. अकेला ज्ञानस्वरूप। अमूर्तिक पुरुषाकार,.. आहाहा! वीतराग ज्ञानमूर्तिस्वरूप.. वह तो वीतराग ज्ञानमूर्तिस्वरूप प्रभु है। आहाहा! कठिन लगे। वहाँ जाना।

एक ओर तो बाहर के धन्धा-फन्दा छोड़कर, फिर कर्म के निमित्त से होनेवाले राग को छोड़कर, पश्चात् ज्ञानादि के मति-श्रुत (आदि) भेद पड़ते हैं, उन्हें छोड़कर.. आहाहा! निर्विकल्प वस्तु में स्थिर हो। तब, इसे मोक्ष का मार्ग (प्रगट) होगा। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र का अंश साथ में आता है। आहाहा! बहुत सरस लिखा है। आस्रव का अधिकार (बहुत सरस है)। आहाहा! यह तो पण्डितजी ने बहुत अच्छा स्पष्टीकरण किया है।

वीतराग ज्ञानमूर्तिस्वरूप देखते हैं और.. यह धर्मध्यान (हुआ)। और शुक्लध्यान में प्रवृत्ति करके.. आगे जाकर अन्दर शुक्लध्यान में (आवे)। यह पहला धर्मध्यान (हुआ)। निश्चय धर्मध्यान, हों! पश्चात् निश्चय शुक्लध्यान। वहाँ शुक्लध्यान का तो एक ही प्रकार होता है। धर्मध्यान के दो प्रकार होते हैं - व्यवहार और निश्चय। इस निश्चय धर्मध्यान में आकर, आगे बढ़कर और शुक्लध्यान में प्रवृत्ति करके अन्तर्मुहूर्त

में केवलज्ञान प्रगट करते हैं.. आहाहा! उसकी ताकत अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्रगटाने की है! आहाहा! उसमें पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द और पूर्ण वीर्य भरा है। आहाहा! उसका जिसने आश्रय लिया और भेदादि का आश्रय छोड़ा तो पहला तो शुद्ध निर्विकल्पस्वरूप में स्थिर होते हैं और आगे बढ़कर शुक्लध्यान में (आते हैं) शुक्ल अर्थात् उज्ज्वल ध्यान। उज्ज्वल ध्यान में जाने पर केवलज्ञान होता है। लो, यहाँ तो पहले से ठेठ तक बात की है। ऐसा है। इसमें व्यवहार करना और व्यवहार से होता है, यह कुछ नहीं आया। गुलाबचन्दजी! आहाहा!

यह पण्डित लिखते हैं, हों! यह। यह जयचन्द पण्डित है न! प्रवचनसार में हेमराज (पण्डित हैं)। इस समयसार (का भावार्थ) पण्डित जयचन्दजी (लिखते हैं)।

अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्रगट करते हैं। इस शुद्धनय का ऐसा माहात्म्य है। अर्थात् कि आत्मा पूर्ण शुद्ध है, उसके परिणमन का यह माहात्म्य है। व्यवहार का माहात्म्य नहीं कि व्यवहार इसे आगे ले जाएगा। आहाहा! व्यवहार तो लक्ष्य में से छोड़ दिया है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप पूर्ण आनन्द, नित्यानन्द प्रभु एकरूप अभेद है, उसमें स्थिर होने पर... आहाहा! बाह्य से दृष्टि समेटकर, निमित्त से, राग से, और भेद से (समेटकर)। आहाहा! निमित्त से समेटकर पूर्ण शुद्ध पर आना; राग को समेटकर वीतरागस्वभाव सन्मुख आना; भेद को छोड़कर अभेद में आना। आहाहा! है तो एक समय, हों! एक साथ (होता है)। समझाने के लिए (क्रम पड़ता है)। बाकी ऐसे चैतन्य ज्योत परमात्मा में स्थिर होने पर भेद छूट जाते हैं, राग छूट जाता है (और) निमित्त तो उसमें है ही नहीं। आहाहा! उसे यहाँ आस्रवरहित मोक्षमार्ग कहते हैं। यह आस्रव अधिकार है न! आहाहा!

मुमुक्षु : आस्रव का अभाव होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : आस्रव का अभाव, वह धर्म है, ऐसा बताना है; इसलिए तात्पर्य कहते हैं न? शुद्धनय का तात्पर्य-रहस्य यह है। शुद्धनय त्यागनेयोग्य नहीं और उसके अत्याग से ही मुक्ति है। राग के त्याग से मुक्ति है और शुद्धनय के अत्याग से मुक्ति है। आहाहा! उसके लिए फिर यह विस्तार किया। दो गाथाएँ (बनायी)। अरे! पाँचवें काल के (श्रोता) के लिये? उसके लिये वस्तु की स्थिति यह है। आहाहा! जब भी केवलज्ञान

प्रगट करेगा, तब इस विधि से ही होगा। जितने केवलज्ञान को प्राप्त हुए हैं, वे 'भेदविज्ञानतः सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।' अभी तक जो मुक्ति को प्राप्त हुए, वे सब भेदज्ञान (अर्थात्) पर से (अपने को) भिन्न किया है। आहाहा! 'अस्यैवाभावतो बद्धा' (अर्थात्) भेदज्ञान के अभाव से बँधे हुए हैं। कर्म के जोर के कारण बँधे हुए हैं, ऐसा नहीं कहा। आहाहा! समयसार में यह दूसरी अपेक्षा है।

'अस्यैवाभावतो बद्धा' आहाहा! राग और भेद से भेद करके और भेदज्ञान करे, उसकी मुक्ति होती है। उस भेदज्ञान के अभाव में (बँधता है)। आहाहा! राग और भेद के लक्ष्य से, निमित्त के लक्ष्य से संसार होता है, उसके कारण भटकना होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए भी निर्विकल्प एकाग्रता का अभ्यास करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह होता है, यह निर्विकल्प हो जाता है। अन्तर निर्विकल्प होऊँ, होऊँ - ऐसा भी नहीं। यह होता है, उसकी बात है। पर से समेटकर अन्दर (गया), इसलिए निर्विकल्प हो गया। आहाहा! सूक्ष्म बात है। यही कहा न? भेद का लक्ष्य और निमित्त से होनेवाले राग का लक्ष्य छोड़कर, अभेद के अनुभव में आवे, वह निर्विकल्प में आया। यही कहा। आहाहा!

मुमुक्षु : शुद्ध उपयोग में आना।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोग अन्दर में जाए, वह उपयोग शुद्ध वहाँ ही अन्दर में जाए। आहाहा! शुभ-अशुभ उपयोग बाहर के लक्ष्य से होता है और शुद्ध (उपयोग) है, वह अन्तर के लक्ष्य से होता है। आहाहा!

मुमुक्षु : उस प्रकार का पुरुषार्थ चारित्र में, उसी प्रकार का पुरुषार्थ सम्यग्दर्शन में ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसी प्रकार का पुरुषार्थ चारित्र के लिए है। स्व के आश्रय के लिए जो पुरुषार्थ समकित के लिए है, वही विशेष आश्रय आत्मा का करना, वह चारित्र है और विशेष आश्रय करना, वह शुक्लध्यान है। आश्रय पूर्ण हो गया, वह केवलज्ञान। बात तो उसका-त्रिकाल का आश्रय करना, यह है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। फिर लोग विरोध करे न! एकान्त है। लोग (बाहर की) प्रवृत्ति में पड़े हों। धन्धे में से निवृत्त न हों, निवृत्त

होवे तो फिर प्रवृत्ति में जोड़ दे, पूजा करो और भक्ति करो... आहाहा! श्रावक के छह प्रकार के कर्तव्य हैं न? देवपूजा (आदि), उसमें जोड़ दे।

मुमुक्षु : श्रावक तो हो, फिर ख्याल आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रावक हुए बिना यह विकल्प और पूजादि है कहाँ? आहाहा! देवपूजा और वह आता है न? गुरुभक्ति, दान,... आहाहा! संयम, वह कब? बापू! वह तो अभी स्वरूप के आश्रय से दृष्टि हुई, स्वरूपारूढ़ होकर (दृष्टि हुई) और भेद से भी पृथक् पड़ा, उसे पश्चात् स्वरूप में स्थिर नहीं हो सकता, तब उसे ऐसे छह विकल्प आते हैं। देवपूजा, श्रावक के छह कर्तव्यरूप से विकल्प आते हैं, उन्हें व्यवहार से कर्तव्य कहा जाता है। आहाहा! यहाँ तो ऐसे बड़े मकान (मन्दिर) बनवाना। विशाल मूर्तियाँ (बनवाना)। निषेध किया कि उससे धर्म नहीं होगा। आहाहा! कितने लोग! हो..हा.. हो जाए। छब्बीस हजार लोग! गाँव में ऐसा हो गया, ओ..हो..हो..! छब्बीस हजार! इतने लोग! हाथी, लोग बाहर की चमक देखे। अरे.. भाई!

बाहर से तो दृष्टि उठा, उसमें बाहर में कुछ नहीं परन्तु राग होता है, वहाँ से दृष्टि उठा और मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि(ज्ञान) भेद पड़े, ऐसे भेद से दृष्टि उठा। आहाहा! करना तो यह है। बाहर के चाहे जैसे ठाठ-बाट हों, (उसमें क्या)?

मुमुक्षु : पुरुषार्थ तो निर्विकल्पता का ही करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका ही करना।

मुमुक्षु : न हो तो फिर से करना, न हो तो दोबारा करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एक ही (पुरुषार्थ) करना। पूर्ण निर्विकल्प करने के लिए भी बारम्बार वहाँ ही जाना, पहली निर्विकल्पता शुरु होवे, पश्चात् भी अन्दर झुकाव हो, रहा करे, वह झुकाव करते.. करते.. करते.. केवलज्ञान हो जाएगा। बीच में कोई क्रिया करे, और ऐसा करे तो होगा, (ऐसा नहीं है)। आहाहा! बीच में आवे, पूर्ण वीतराग न हो तो बीच में बहुत काल हो तो रागादि रहे, परन्तु वह बन्ध का कारण है। वह कहीं मोक्ष का-मुक्ति का कारण नहीं है। आहाहा! निर्विकल्पता में तो शास्त्र का ज्ञान भी काम नहीं करता। आहाहा! वह भी परलक्ष्य से भेद पड़ा। आहाहा! ऐसे ज्ञान में अपने को ज्ञान मानकर

दुनिया को समझावे, करे अर्थात् मानो इससे धर्म होगा, वे भी भूल में पड़े हैं। आहाहा!

(यहाँ कहते हैं) शुद्धनय का ऐसा माहात्म्य है। इसलिए शुद्धनय के अवलम्बन से.. आहाहा! जब तक केवलज्ञान उत्पन्न न हो, तब तक सम्यग्दृष्टि जीवों को.. धर्मी जीवों को शुद्धनय का त्याग नहीं करना चाहिए। आहाहा! अन्तर में भण्डार भरा है, पूर्णानन्द (भरा है) उसके ऊपर से लक्ष्य छोड़नेयोग्य नहीं है। उसका आश्रय छोड़नेयोग्य नहीं है। जब तक केवलज्ञान (न) हो, तब तक उसका आश्रय करनेयोग्य है—प्रभु का आश्रय करनेयोग्य है। पर्याय का और राग का आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा!

ऐसा श्री गुरुओं का यह उपदेश है लो! 'इदम् एव तात्पर्य' आया था न? इसलिए कहते हैं। अमृतचन्द्राचार्यदेव (कहते हैं), इसका तात्पर्य यह है। पर से हटकर स्व का-चैतन्य का आदर (करना)। वह शुद्धनय का त्याग नहीं। त्याग (करना तो) व्यवहारनय का त्याग (करना)। शुद्धनय का कभी त्याग नहीं है। शुद्धनय के त्याग से संसार है, शुद्धनय के अत्याग से मोक्ष है। आहाहा! उसका यह विस्तार किया है। मूल तो वह (श्लोक) १२२ है, वही उत्कृष्ट है। इद-मेवात्र तात्पर्य हेयः शुद्ध-नयो न हि। देखा? हेयः शुद्ध-नयो न हि। नास्ति बन्धस्तदत्यागात्तत्यागाद्बन्ध। बहुत संक्षिप्त (किया)। शुद्धस्वभाव का आदर, उसका परिणमन, उसके अत्याग से मोक्ष है। अत्याग से मोक्ष है और उसके त्याग से बन्ध है। बहुत संक्षिप्त! माल (बहुत है)।

त्रिकाल द्रव्य के आश्रय से, उसके अत्याग से मुक्ति है। व्यवहार के त्याग से मुक्ति है। व्यवहार के अत्याग से बन्धन है। आहाहा! और शुद्धनय के अत्याग से मुक्ति है। आहाहा! बहुत संक्षिप्त! अभी तो कठिन पड़े। सुनने को मिलता नहीं। यह करो और अन्त में (ऐसा कहे), गुरु की भक्ति करो! देव-गुरु की भक्ति करो, बस! धुन लगाओ! वह तो राग है। आहाहा! वह कहीं सम्यग्दर्शन का कारण नहीं है।

मुमुक्षु : गुरु की आज्ञा की (मानी)।

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्होंने आज्ञा इसकी की ही नहीं कि मेरी भक्ति से तेरा कल्याण होगा, ऐसा कहा नहीं। तेरी भक्ति से तेरा कल्याण होगा। यह सब तो व्यवहार भक्ति-राग है। वह तो आता है न! सिद्धभक्ति! वह निश्चय (भक्ति) आती है। सिद्धभक्ति, है नाम

सिद्धभक्ति परन्तु वह अपनी सिद्धभक्ति है। आहाहा! दूसरी जगह सिद्धभक्ति आती है, वह व्यवहार से है। पहली निश्चयभक्ति कही। भक्ति अधिकार, नियमसार। पहली निश्चयभक्ति कही, पश्चात् व्यवहार सिद्ध की भक्ति व्यवहार से (कही)। पश्चात् व्यवहार लिया और उसमें तो वह सिद्ध की भक्ति अर्थात् तेरी भक्ति, ऐसा। ऐसा लिया है। आहाहा! ऐसी गाथा आती है।

‘सिद्ध समान सदा पद मेरो’ आहाहा! सदा शुद्ध चैतन्य अकेला पवित्र का धाम, वह पवित्र पुरुषों को पवित्र के धाम को ध्यान में लेना। आहाहा! उसके ध्यान का विषय पूर्ण पवित्रता लेना। उसके ध्यान का विषय ध्यान की पर्याय भी नहीं है। आहाहा! ऐसा है।

कलश-१२४

अब, आस्रवों का सर्वथा नाश करने से जो ज्ञान प्रगट हुआ, उस ज्ञान की महिमा का सूचक काव्य कहते हैं:-

(मन्दाक्रान्ता)

रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां,
नित्योद्योतं किमपि परमं वस्तु सम्पश्यतोऽन्तः।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा-
नालोकान्तादचल-मतुलं ज्ञान-मुन्मग्न-मेतत् ॥१२४॥

श्लोकार्थः : [नित्य-उद्योतं] जिसका उद्योत (प्रकाश) नित्य है, ऐसी [किम् अपि परमं वस्तु] किसी परम वस्तु को [अन्तः सम्पश्यतः] अन्तरंग में देखनेवाले पुरुष को, [रागादीनां आस्रवाणां] रागादि आस्रवों का [झगिति] शीघ्र ही [सर्वतः अपि] सर्व प्रकार [विगमात्] नाश होने से, [एतत् ज्ञानम्] यह ज्ञान [उन्मग्नम्] प्रगट हुआ-[स्फार-स्फारैः] कि जो ज्ञान अत्यन्तात्यन्त (-अनन्तानन्त) विस्तार को प्राप्त [स्वरसविसरैः] निजरस के प्रसार से [आ-लोक-अन्तात्] लोक के अन्त तक के [सर्वभावान्] सर्व

भावों को [प्लावयत्] व्याप्त कर देता है अर्थात् सर्व पदार्थों को जानता है, [अचलम्] वह ज्ञान प्रगट हुआ, तभी से सदाकाल अचल है अर्थात् प्रगट होने के पश्चात् सदा ज्यों का त्यों ही बना रहता है—चलायमान नहीं होता, और [अतुलं] वह ज्ञान अतुल है अर्थात् उसके समान दूसरा कोई नहीं है।

भावार्थ : जो पुरुष अन्तरंग में चैतन्यमात्र परम वस्तु को देखता है और शुद्धनय के आलम्बन द्वारा उसमें एकाग्र होता जाता है, उस पुरुष को तत्काल सर्व रागादिक आस्रवभावों का सर्वथा अभाव होकर, सर्व अतीत, अनागत और वर्तमान पदार्थों को जाननेवाला निश्चय, अतुल केवलज्ञान प्रगट होता है। वह ज्ञान सबसे महान है, उसके समान दूसरा कोई नहीं है।।१२४।।

श्लोक - १२४ पर प्रवचन

अब, आस्रवों का सर्वथा नाश करने से जो ज्ञान प्रगट हुआ, उस ज्ञान की महिमा का सूचक काव्य कहते हैं:- लो, १२४ (कलश)

रागादीनां झगिति विगमात्सर्वतोऽप्यास्रवाणां,
नित्योद्योतं किमपि परमं वस्तु सम्पश्यतोऽन्तः ।
स्फारस्फारैः स्वरसविसरैः प्लावयत्सर्वभावा-
नालोकान्तादचल-मतुलं ज्ञान-मुन्मग्न-मेतत् ॥१२४॥

[नित्य-उद्योतं] भगवान आत्मा! नित्य जिसका उदय है, जिसका नित्य त्रिकाल उदय है। आहाहा! ऐसी जो आत्मा चीज़, चैतन्य से भरपूर जलहल ज्योति नित्य वस्तु है, परमात्मस्वरूप से भरपूर परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप से भरपूर परमात्मस्वरूप.. आहाहा! ऐसी कोई चीज़ नित्य है।

ऐसी [किम् अपि परमं वस्तु] किसी परम वस्तु को... इस प्रकार किसी परम वस्तु को अर्थात् आत्मा को। आहाहा! [अन्तः सम्पश्यतः] अन्तरंग में.. सम्यक् प्रकार से देखनेवाले पुरुष को,.. सम्यक् है न? [सम्पश्यतः] है। [सम्पश्यतः] है न? अर्थात् देखने का लिया है। [अन्तः सम्पश्यतः] वहाँ (इसका अर्थ) अन्तरंग में देखनेवाले को,

सम्यक् नहीं। अन्तरंग में देखनेवाले पुरुष को,.. भगवान जो आत्मा दूसरे को देखता है, उस देखनेवाले को देखने पर... आहाहा! जिसकी दशा में पर का दिखना होता है, उस दशा में स्व को देखे। आहाहा! अभी सम्यग्दर्शन किसे कहना, इसकी खबर नहीं होती और साधु नाम धराते हैं। आहाहा!

नित्य उद्योत है, ऐसी परम वस्तु को अन्तरंग में देखनेवाले पुरुष को, रागादि आस्रवों का.. [झगिति] उन रागादि का त्याग शीघ्रता से होता है। आहाहा! वीतरागस्वरूप भगवान आत्मा त्रिकाल वीतरागस्वरूप ही है। आहाहा! इसे देखनेवाले। त्रिकाली वीतरागी स्वरूप प्रभु है। त्रिकाल वीतरागस्वरूप है। ऐसे आत्मा को देखनेवाले। आहाहा! आस्रवों से शीघ्र ही सर्व प्रकार.. आस्रव से तो ठीक परन्तु सर्व प्रकार से (ऐसा कहा है)। अर्थात् कि कोई अंश न रहे। आहाहा!

सर्व प्रकार नाश होने से,.. आस्रव का सर्व प्रकार से नाश होने से। आहाहा! [एतत् ज्ञानम्] यह ज्ञान.. अर्थात् आत्मा। [उन्मग्नम्] आया। [उन्मग्नम्] बाह्य। प्रगट हुआ.. निमग्न में अन्दर समाहित हो गया। यह प्रगट हुआ। आहाहा! उन्मग्न, निमग्न दो नदियाँ हैं न! अपने आ गया न! उन्मग्न। सवेरे में उन्मग्न। पर्यायदृष्टि से देखे तो उन्मग्न है। द्रव्यदृष्टि से देखे तो निमग्न है। आहाहा! रागादि आस्रवों का नाश होने से, यह ज्ञान प्रगट हुआ.. [स्फार-स्फारैः] आहाहा! [स्फार-स्फारैः] का अर्थ? अत्यन्त, अत्यन्त। [स्फार-स्फारैः] का अर्थ? अत्यन्त... अत्यन्त। जहाँ चैतन्यशक्ति का आश्रय लिया, तब अत्यन्त... अत्यन्त... पर्याय में प्रगट होता जाता है। आहाहा! ऐसा। अत्यन्तात्यन्त (-अनन्तानन्त).. [स्फार-स्फारैः] का अर्थ किया।

विस्तार को प्राप्त.. ज्ञान की पर्याय की विशालता प्रगट होने पर [स्वरसविसरैः] निजरस के प्रसार से.. आनन्द के फैलाव से, विस्तार से ज्ञान जहाँ आस्रवरहित होकर पूर्णपने को प्राप्त हुआ, तब अपने निज आनन्द के रस से विस्तरित हुआ। ज्ञान तो पूर्ण हुआ परन्तु अतीन्द्रिय आनन्द का रस विस्तरित हुआ। ज्ञान के साथ अतीन्द्रिय आनन्द आया। आहाहा! निजरस के प्रसार से लोक के अन्त तक के सर्व भावों को... आहाहा! व्याप्त कर देता है.. अर्थात् जानता है। आहाहा! यह ज्ञान जहाँ अन्तर पूर्ण स्वरूप को प्राप्त हुआ, पूर्ण स्वरूप के आश्रय से, पूर्ण स्वरूप के आश्रय से पूर्ण स्वरूप प्रगट हुआ, वह

लोकालोक पूर्ण को व्याप्त कर देता है। व्याप्त (कर देता है)। अर्थात् उसे जान लेता है। आहाहा! कोई वस्तु बाकी नहीं रहती। व्याप्त कर देता है, जान लेता है।

[अचलम्] वह ज्ञान प्रगट हुआ, तभी से सदाकाल अचल है.. जो ज्ञान केवल हुआ, वह तो हुआ सो हुआ। सादि-अनन्त अचल है। आहाहा! ऐसी-ऐसी पर्याय की अनन्त शक्तियों का वह सागर है। आहाहा! एक पर्याय एक गुण की, ऐसी अनन्त पर्यायों अनन्त गुणों की। वह ज्ञान प्रगट हुआ, तभी से सदाकाल अचल है अर्थात् प्रगट होने के पश्चात् सदा ज्यों का त्यों ही बना रहता है.. जो स्वरूप प्रगट हुआ, वह ऐसा का ऐसा रहता है। सोलह आने जैसे स्वर्ण प्रगट हुआ, वैसे यह पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान जो प्रगट हुआ, (वह) ऐसा का ऐसा रहता है। 'सादि अनन्त-अनन्त समाधि सुख' सदा ज्यों का त्यों ही बना रहता है-चलायमान नहीं होता, और [अतुलं] वह ज्ञान अतुल है.. आहाहा! जिसे कोई उपमा नहीं दी जा सकती, ऐसा अतुल है।

उसके समान दूसरा कोई नहीं है। ऐसा वह ज्ञान आस्रवरहित होने पर अनास्रवी भगवान आत्मा का आश्रय लेकर पूर्ण अनास्रवी दशा होती है, तब आस्रव जरा भी नहीं रहता परन्तु वह पूर्ण को जाने और अनन्त आनन्द को फैलाता हुआ ज्ञान प्रगट होता है। अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्द, दोनों। साथ में अनन्त आनन्द-सुख भी प्रगट हुआ। अकेला ज्ञान नहीं; ज्ञान के साथ अतीन्द्रिय आनन्द भी विस्तरित हुआ। आहाहा! उसके समान दूसरा कोई नहीं है। लो! आहाहा!

भावार्थ है। जो पुरुष अन्तरंग में चैतन्यमात्र परम वस्तु को देखता है और शुद्धनय के आलम्बन द्वारा उसमें एकाग्र होता जाता है, उस पुरुष को तत्काल सर्व रागादिक आस्रवभावों का सर्वथाव अभाव होकर, सर्व अतीत, अनागत और वर्तमान पदार्थों को जाननेवाला निश्चय, अतुल केवलज्ञान प्रगट होता है। वह ज्ञान सबसे महान है, उसके समान दूसरा कोई नहीं है।

विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)